मुख्य बिंदु

ओम्

जीवन अमृत का द्वार

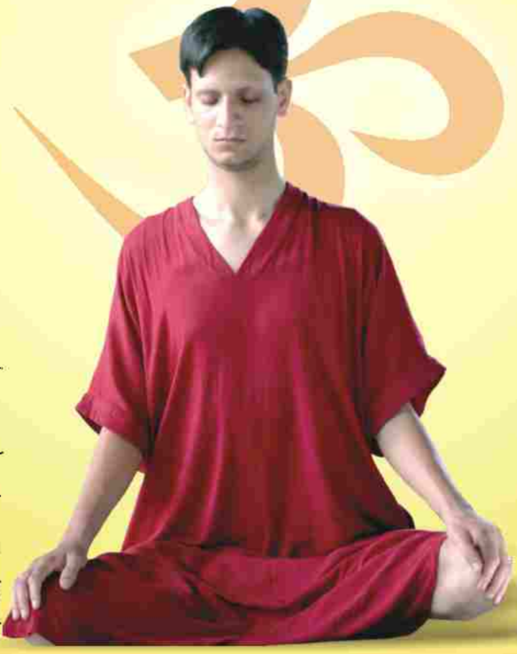

सहज शब्द का अर्थ होता है : जो अपने से जन्मता है। सहज। ज का अर्थ होता है : जन्मना। जो अपने से जन्मता है। तुम्हारे भीतर कुछ चीजें हैं जो अपने से चल रही हैं। जैसे श्वास। तुम चला नहीं रहे, अपने से चल रही है। तुम सोए रहते हो तब भी चलती रहती है। तुम काम में लगे रहते हो तब भी चलती रहती है—कोई याद थोड़े ही रखनी पड़ती है। अगर याद रखनी पड़े, तो जिंदा रहना मुश्किल है। जरा भूले, जरा किसी काम में ज्यादा उलझ गए, सांस लेना भूल गए, खात्मा हो गया। रात सो गए, खात्मा हो गया। बेहोश भी तुम पड़े रहो तो भी श्वास चलती रहती है। श्वास तुम्हारे भीतर सहजता की प्रतीक है।

बुद्ध ने तो श्वास को ही समस्त योग का आधार माना और विपस्सना एकमात्र ध्यान की विधि दी, कि अपनी श्वास के साक्षी हो जाओ, बस काफी है। सिर्फ श्वास भीतर आई, बाहर गई, इसको देखते रहो—कुछ मत करो—जब सुविधा हो तब श्वास का भीतर आना और बाहर जाना देखते रहो। श्वास जब भीतर आती है, तब होश रखो कि भीतर आ रही है। आते-आते भीतर एक गहराई पर आकर श्वास क्षण भर को ठहर जाती है—बस, क्षण भर को—उसी जगह से द्वार है अंतरात्मा में; जहां श्वास ठहरती है, ठिठकती है। फिर श्वास बाहर की तरफ जाती है। फिर श्वास के साथ बाहर जाओ। फिर बाहर जाकर भी एक जगह है जहां जाकर श्वास क्षण भर को ठिठक जाती है, वहां भी द्वार है, वहां द्वार है परमात्मा का।

अगर बाहर के द्वार से प्रवेश करोगे, तो परमात्मा के द्वारा अपने में प्रवेश हो जाएगा। और अगर भीतर से प्रवेश करोगे, तो अपने द्वारा परमात्मा में प्रवेश हो जाएगा। दोनों द्वारों में से कोई भी एक चुन लो।

ज्ञानी भीतर का द्वार चुनता है, भक्त बाहर का द्वार चुनता है। मगर वे दोनों द्वार एक ही परमात्मा के द्वार हैं।

श्वास सहजतम प्रक्रिया है... और ध्यान रखना, प्राणायाम के लिए नहीं कह रहा हूं। कि गहरी श्वास लो, कि एक नाक बंद करके और एक नाक से श्वास लो, फिर इतने समय तक श्वास को भीतर रोको, फिर इतने समय तक बाहर रोको—वह तो असहज हो गया, वह तो कृत्रिम हो गया। नहीं, श्वास जैसे चल रही है

अपने-आप, प्राकृतिक, बस उसको देखते रहो।

बुद्धों की यह प्रक्रिया अनूठी है।

गुलाल इसी को सहज नाम कहते हैं। इसको नाम क्यों कहते हैं? क्योंकि अगर तुम इस श्वास को सुनते रहे, देखते रहे, भीतर आना, बाहर जाना भीतर आना, बाहर जाना और धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर का द्वार तुम्हें अनुभव में आ जाए या बाहर का द्वार अनुभव में आ जाए, तो तुम चकित हो जाओगे; तुम मंदिर के द्वार पर ही बैठे थे। कहीं जाना न था। काबा तुम्हारे भीतर था, काशी तुम्हारे भीतर थी, गिरनार तुम्हारे भीतर था, तुम कहां भागे फिरते थे? और जैसे-जैसे श्वास के साथ तुम्हारा तालमेल बैठेगा, तारतम्य बैठेगा, वैसे-वैसे तुम्हें एक नाद सुनायी पड़ेगा, जिसको संतों ने अनाहत कहा है, अनहद कहा है, उस नाद का नाम ही 'नाम' है। वह नाद अगर हम भाषा में उतारने की कोशिश करें, तो करीब-करीब ओंकार जैसा है। करीब-करीब। ठीक ओंकार ही नहीं। ओंकार उसकी निकटतम ध्वनि है। ओम् उसकी निकटतम ध्वनि है।

इसलिए ओम् को सारे धर्मों ने स्वीकार किया है।

भारत में तीन धर्म पैदा हुए : जैन, बौद्ध, हिंदू। उनका सब मामलों में विरोध है, किसी चीज में उनको मतैक्य नहीं है, लेकिन ओम् के संबंध में वे तीनों सहमत हैं। और यहूदी, ईसाई और मुसलमान, तीन धर्म भारत के बाहर पैदा हुए। वे तीन भी ओम् के संबंध में सहमत हैं। हालांकि उन्होंने ओम् को अलग-अलग नाम दिए हैं। थोड़े-से भेद। वे भेद स्वाभाविक हैं। क्योंकि ओम् कोई शब्द नहीं है, ध्वनि है। और ध्वनि का तुम कैसा रूपांतर करोगे भाषा में, यह तुम पर निर्भर है। मुसलमान कहते : अमीन। वह ओम् का ही रूप है। ईसाई और यहूदी कहते : आमेन। वह ओम् का ही रूप है। यह भीतर जब श्वास पर तुम्हारा साक्षीभाव टिक जाता है, तब तुम्हें यह ध्वनि सुनाई पड़नी शुरू होती है। तुम्हें कहना नहीं है ओम्, ओम्,—तुम कहोगे तो औपचारिक हो गया—यह तुम्हें सुनायी पड़े। तुम तो केवल श्रोता

भारत में तीन धर्म पैदा हुए : जैन, बौद्ध, हिंदू। उनका सब मामलों में विरोध है, किसी चीज में उनको मतैक्य नहीं है, लेकिन ओम् के संबंध में वे तीनों सहमत हैं। और यहूदी, ईसाई और मुसलमान, तीन धर्म भारत के बाहर पैदा हुए। वे तीन भी ओम् के संबंध में सहमत हैं

उपजता हुआ दिखायी पड़े, सहज हो तो ही समझना कि सार्थक है।

करु मन सहज नाम ब्यौपार, छोड़ि सकल ब्यौहार।।

निसुबासर दिन रैन ढहतु है, नेक न धरत करार।।

स्मरण रखो कि यहां तो प्रतिदिन जीवन कम हो रहा है। एक दिन गया, एक रात गयी, एक दिन कम हआ, एक रात कम हुई। इस बहते हुए समय के प्रवाह में कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। यहां अपना घर मत बनाना। यहां घर बनाओगे तो रोओगे, तड़पोगे, पछताओगे।

निसुबासर दिन रैन ढहतु है...

सब ढहा जा रहा है, गिरा जा रहा है। इस गिरते हुए भवन में तुम अपने को ज्यादा आसक्त न रखो। शाश्वत की खोज कर लो। इस भवन में शाश्वत की भी धुन आ रही है—वही ओंकार की ध्वनि है, वही सहज नाम है—अगर तुम उसको पकड़ लो, उस पतले-से धागे को पकड़ लो, उस छोटी-सी किरण को पकड़ लो, तो उसी के साथ उड़ते हुए सूरज तक पहुंच जाओगे।

मेरे इस जीवन-मरु में क्यों रूप-सुधा बरसायी?

दो क्षण के प्रभात में ऐसी जीवन-निधि क्यों आयी?

मेरे स्वर परिमित हैं जैसे प्रातः नभ के तारे,

किंतु मिलन के भाव न भर सकते हैं सागर सारे।

जीवन का यह बाण चुभा है मुझ में कैसा विषमय,

क्या निकाल सकते हैं अंतिम क्षण के हाथ तुम्हारे?

तन के लघु घट में अतृप्ति सागर की लहर उठायी,

मेरे इस जीवन-मरु में क्यों रूप-सुधा बरसायी?

प्रिय यह रात बहुत छोटी थी, कैसे मैं मिल पाऊं?

मेरा स्वर नश्वर है, कैसे गीत तुम्हारे गाऊं?

सांसों के टुकड़े कर डाले, वे भी नियमित गति में,

कैसे इनमें चिर मिलाप का जीवन आज सजाऊं?

एक सुमन के जीवन ने क्यों यह वसंत श्री पायी?

मेरे इस जीवन-मरु में क्यों रूप-सुधा बरसायी?

जीवन तो मरुस्थल है, मगर इसमें रूप की सुधा बरस सकती है। जीवन तो कंकड़-पत्थर है, लेकिन इसमें मोती झर सकते हैं—झरत दसहुं दिस मोती! जीवन तो परिवर्तन है, लेकिन इसमें शाश्वत से मेल हो सकता है, सेतु बन सकता है। जीवन तो मृत्यु है, लेकिन इस जीवन का ही अमृत का द्वार बनाया जा सकता है।

— ओशो

झरत दसहुं दिए मोती, पांचवां प्रवचन
(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)